संयुक्त परिवार का ऐतिहासिक विकास एवं वर्तमान में उसकी प्रासंगिकता

✧ डॉ. रविन्द्र सिंह ★ श्री राजेश पाटिल ★ श्री सूर्यकान्त शर्मा

प्राचीनकाल से वर्तमान तक समय समय पर ऐसे अनेकानेक साहित्य का निर्माण हुआ है जिनसे भारतीय समाज एवं संस्कृति पर विपुल प्रकाष पड़ता है और यह आज भी हमारा पथ प्रदर्षक है। तेजी से बदलते सामाजिक परिवेष में सामाजिक एकता एवं सुरक्षा की दृष्टि से संयुक्त परिवार की आवष्यकता आदि विषयों पर इनका पुनः चिंतन करना युक्तिसंगत प्रतीत होता है। संयुक्त परिवार से आषय उस संगठित परिवार से है जो "एक पविार, एक विचार, एक ध्येय, एकता और सुरक्षा की भावना से एकत्रित होकर एक ही स्थान पर एक ही पूर्वज के वंषज निवास करते हुए सभी अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हों तथा उनका परस्पर घनिष्ठ रक्त सम्बन्ध हो एवं जिनका सुख–दुःख संयुक्त रूप से जिसमें सन्निहित हो।" संयुक्त परिवार के पीछे भारतीयों का सबसे बड़ा उद्देष्य था कि समानता की भावनाओं से सभी एक मत होकर निर्धारित मान्यताओं का पालन करते हुए संगठित होकर अपने संयुक्त परिवार की सुरक्षा करें। सम्पूर्ण परिवार को एक सूत्र में बांधने के इसी तत्व की आज आवष्यकता अपेक्षित है। प्रस्तुत षोध–पत्र में इसी उद्देष्य को प्रभावी रूप से समझने के लिए प्राचीन प्रमाणों के आलोक मे इसके ऐतिहासिक विकास की रूपरेखा तथा वर्तमान में उसकी प्रासंगिकता को प्रस्तुत करने का अल्प प्रयास किया गया है तथा यह बताने की कोषिष की गयी है कि हमारे प्राचीन ग्रंथों के पुनः चिन्तन–मनन व उन्हें आत्मसात कर विश्रृंखलित हो रहे परिवारों को एकता के सूत्र में अब भी बांधा जा सकता है।

l;Dr ifjokj dk ,frgkfld Lo:i ,o fodkl

जहाँ तक संयुक्त परिवार के ऐतिहासिक स्वरूप एवं उसके विकास का प्रष्न है तो संयुक्त परिवार की रूपरेखा तथा विकास प्राचीनकाल से ही देखने को मिलता है। संयुक्त परिवार को भारतीय समाज, विषेष रूप से हिन्दुओं की एक प्रमुख विषेषता माना जाता रहा है। पूर्व वैदिक युग में पितृप्रधान संयुक्त परिवार प्रणाली की कल्पना की गई थी। वैदिक साहित्य में संयुक्त परिवार के अनेक उदाहरण मिलते है जैसे ऋग्वेद के दसवें मण्डल में एक स्थान पर पुरोहित विवाह के समय वर–वधू को आषीर्वाद देते हुए कहता है कि " तुम यहीं इसी घर में रहो तथा वियुक्त मत होओ। अपने घर में पुत्रों और पौत्रों के साथ खेलते और आनंद मनाते हुए समस्त आयु का उपभोग करो।"[1] ऋग्वेद में संयुक्त परिवार के सभी सदस्यों का समान रूप से ध्यान रखने के लिए आगे यह भी कहा गया है कि "हे वधु! तुम सास, ससुर, ननद और देवर पर अपने व्यवहार से शासन करने वाली रानी बनो।"[2] ये कथन इस बात कि ओर ध्यान आकर्षित करता है कि पूर्व वैदिक काल में संयुक्त परिवार की परंपरा थी, जिसमें माता–पिता, पति–पत्नी, भाई–बहन और पुत्र–पुत्री सभी रहते थे तथा बाद में होने वाला उनका परिवार भी उसमें सम्मिलित हो जाता था। नव आगुन्तक वधु से सबके साथ श्रेष्ठ व्यवहार की अपेक्षा का यह मंत्र संयुक्त परिवार की उत्तम परम्परा का प्रमाण है। इस तरह संयुक्त परिवार में एक ही रक्त संबंध के सभी सदस्य संपत्ति में समान रूप से अधिकार रखते थे, धर्म–पूजा करते थे तथा उनका एक साथ भोजन बनता था। वस्तुतः परिवार में सबसे प्रमुख और वयोवृद्ध व्यक्ति की सत्ता और प्रतिष्ठा सर्वोच्च रही है शेष सभी उसके द्वारा एक दूसरे से बंधे रहते थे। इस प्रकार भारत में परिवार का विकास इसी अनुरूप हुआ। जिसकी आज के दौर में भी अत्यंत आवष्कता है।

"संयुक्त परिवार उन लोगों का समूह है जो प्रायः एक ही घर में निवास करते हैं, जो लोग एक ही भोजनालय में भोजन करते हों, जिनका संपत्ति पर सामान्य अधिकार हो तथा जो पूजा पाठ में एकमत होकर भाग लेते है और जिनका एक दूसरे से रक्त संबंध हो।"[3] ऐसा ही मत डॉ. दुबे का है कि "यदि कई मूल परिवार एक साथ रहते हों और इनमें निकट का नाता हो, एक ही स्थान पर भोजन करते हों और एक आर्थिक इकाई के रूप में कार्य करते हों तो उन्हे सम्मिलित रूप से संयुक्त परिवार कहा जाता है।[4]

अथर्ववेद में परिवार के उच्चतम आदर्षों पर बल देते हुए कुटुम्ब के सदस्यों को संयुक्त बने रहने एवं साथ भोजन करने तथा एक साथ उपासना करने की प्रेरणा दी गई है।[5] गृह्यसूत्रों, बौद्धग्रंथों, शास्त्रकारों एवं स्मृतिकारों ने भी संयुक्त परिवार का विषद् चित्रण करते हुए इसे सामाजिक एकता एवं सुरक्षा के लिए आवष्यक माना है एवं इसके विघटन पर चिन्ता व्यक्त की है। विज्ञानेष्वर की मिताक्षरा के अनुसार "संयुक्त परिवार में पैतृक

✧ foHkkxk/;{k bfrgkl] 'kkldh; Lukrdkrj egkfo|ky;] >kcqvk ¼e-i-½
★ vfrfFk fo}ku] bfrgkl] 'kkldh; Lukrdkrj egkfo|ky;] >kcqvkA

संपत्ति पर सभी साझीदारों का संयुक्त स्वामित्व होता है, स्वत्व की उत्पत्ति जन्म से होने के कारण एवं नये उत्तराधिकारियों के आगमन तथा पुराने दामादों के निधन से संपत्ति पर स्वत्व रखने वालों की संख्या घटती बढ़ती रहती थी, अतएव इसमें साझीदार का हिस्सा कभी निष्चित नहीं रहता था।[6] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि संयुक्त परिवार के मूल में सम्पत्ति का अधिकार भी था। पिता परिवार का मुखिया था इसलिए उसको पारिवारिक संपत्ति पर पूर्ण वैयक्तिक अधिकार एवं परिवार के सदस्यों पर निरंकुष नियंत्रण प्राप्त था। भूमि और धन पर निजी संपत्ति का अधिकार और उसका पुत्रों को हस्तांतरण संयुक्त परिवार की आधार षिला को बनाये रहा है। यही कारण है कि शुद्रों में जिनके पास संपत्ति या तो थी ही नहीं या न्यूनतम थी, प्रायः एकल परिवार पाए जाते थे। आज भी संयुक्त परिवारों का रूप यदि कहीं है तो वह कृषक परिवारों, व्यावसायिक परिवारों या भूतपूर्व जमींदार अथवा राजसी परिवारों में ही देखने को मिलता है।

इस प्रकार प्राचीनकाल में भारत में संयुक्त परिवार की परंपरा विस्तृत क्षेत्र में थी। इसका उद्‌देष्य भले ही सामुहिक उत्तरदायित्व या फिर पितृसत्तात्मक समाज को ठोस करना रहा हो किन्तु इसी संयुक्त परिवार की परंपरा ने भारतीय समाज और संस्कृति को मजबूती प्रदान की।

or'eku e l;Dr ifjokj dk fo?kVu

वस्तुतः वर्तमान में संयुक्त परिवार विघटन की स्थिति में हैं और उसके भविष्य को लेकर भिन्न–भिन्न प्रकार के तर्क–वितर्क दिये जाते हैं। लेकिन संयुक्त परिवार पर जो अब तक शोध हुए हैं उनके आधार पर दो मत प्रस्तुत किये जा सकते है। एक मत तो यह है कि संयुक्त परिवार विघटित हो रहा है और संयुक्त परिवार का भविष्य अंधकारमय है। इसका प्रधान कारण संयुक्त परिवार में अनेक दोषों का जन्म है तथा वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए यह संस्था आवष्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ है।

आज धर्म की संस्था बदल रही है। इस संदर्भ में किंग्सले डेविसं का विचार है कि ”आज से 200 वर्ष पूर्व भारत की विषेषता संयुक्त परिवार के गुण थे परंतु आज नहीं। औद्योगिकीकरण ने संयुक्त परिवार को बुरी तरह से प्रभावित किया है इस प्रक्रिया के कारण संयुक्त परिवार विघटित हो रहा है। संयुक्त परिवार व्यवस्था कृषि प्रधान समाजों के लिए उचित थी जिनमें सरल, विषेषीकरण, स्थिर पद, अल्प गतिषीलता, विज्ञान का कम विकास और प्रथाओं की प्रधानता थी। ये तमाम गुण पहले भारतीय समाज में मिलते थे, अब भारत उद्योग और विज्ञान के क्षेत्र मे उन्नति कर रहा है अतः इस दिषा में संयुक्त परिवार विघटित होगा ही।”[7]

कल का भारत विष्वव्यापीकरण, उदारीकरण एवं निजीकरण के वैष्विक परिदृष्य में पूर्णतः निमग्न होगा परन्तु समाज व संस्कृति के क्षेत्र में इस निजीकरण, विष्वव्यापीकरण की हमें बहुत अधिक कीमत चुकानी पड़ेगी। ”वसुधैव कुटुम्बकम्“ की संस्कृति वाले भारतीय अपने ही भाईयों के साथ एक परिवार में रहने से कतरायेगें। इस प्रकार संयुक्त परिवार व्यवस्था पूर्णतः विघटित हो जायेगी। समाज से ”अतिथि देवो भवः“ की भावना लुप्त हो जायेगी और पारस्परिक संबंधों के आधार भावनात्मक लगाव के स्थान पर भौतिक लाभ में परिलक्षित होने लगेगें। इसी उपभोक्तावादी संस्कृति के दौर में भारतीय संस्कृति के लिए अपनी सांस्कृतिक अस्मिता को बनाये रखना एक गंभीर चुनौती साबित होगी।

किन्तु दूसरा मत इस विचार के बिल्कुल विपरीत है। आई. पी. देसाई, के. एन. कपाड़िया का विचार है कि संयुक्त परिवार का भविष्य अंधकारमय नहीं है। कपाड़िया का कथन है कि ”हिन्दू भावानाएँ आज भी संयुक्त परिवार के पक्ष में हैं। इन विद्वानों का मत है कि दरअसल संयुक्त परिवार में परिवर्तन हो रहे हैं। जब सभी संस्थाओ में परिवर्तन हो रहे हैं तो संयुक्त परिवार में परिवर्तन क्यों नहीं होंगे। एम. एन. श्रीनिवास का विचार है कि आधुनिक युग में भी संयुक्त परिवार की महत्ता बढ़ती जा रही है एवं संयुक्त परिवार की भावना केवल अलग रहने से ही समाप्त नहीं हो जाती।“ [8] के. एम. कपाड़िया ने भी मुंबई में एक सर्वेक्षण द्वारा यह पता लगाया है कि बहुमत लोग (57 प्रतिषत) आज भी संयुक्त परिवारों में रहने के पक्ष में हैं। [9] स्थानीय स्तर पर महाविद्यालयीन विद्यार्थियों से भी जब हमने संयुक्त परिवार की आवष्कता पर चर्चा की गयी तो अधिकांष विद्यार्थियों ने संयुक्त परिवार के पक्ष में अपनी बात कही।

इन विचारों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि संयुक्त परिवार का अब वह स्वरूप नहीं रहा है जो कि पहले था क्योंकि इसकी संरचना तथा प्रकार्यों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए है परंतु आने वाले समय में यह बिल्कुल समाप्त या विघटित हो जायेगा, यह कहना गलत है क्योंकि आज भी भारत की तीन चौथाई जनसंख्या गाँवो में रहती है तथा कृषि ही उनका मुख्य व्यवसाय है। अगर बदलते हुए परिवेष के साथ संयुक्त परिवार अपने दोषो को दूर कर ले तो निःसंदेह संयुक्त परिवार का भविष्य उज्ज्वल है।

or'eku e| l;Dr ifjokj dh ikIkfxdrk

वर्तमान में सामाजिक एकता व सुरक्षा की दृष्टि से संयुक्त परिवार की महत्ता दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। पहले परिवार एक धारा में आगे बढ़ता था। वानप्रस्थ आश्रम के दौरान परिवार के वृद्ध व्यक्ति परिवार में महत्ती भूमिका निभाते थे। लेकिन आज हमें इस आश्रम के अंतर्गत बिखराव दिखाई दे रहा है। इसके उदाहरण आज वृद्धाश्रमों के रूप में सामने आ रहे हैं या फिर वृद्ध स्वयं ही अपने कष्टों से तंग आकर मृत्यु के षिकार होते जा रहें हैं। संयुक्त परिवार में एक संस्कृति का विकास होता है तथा परिवार के अन्य सदस्य वरिष्ठ सदस्यों से कुछ न कुछ सीखते ही है। लेकिन आज ऐसा नहीं है। एकांकी परिवारों के पल्लवित होने से संस्कृति को आघात पहुँच रहा है।

आज के परिवारों में तनाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। "ऐसे दौर में हमारी सांस्कृतिक विरासत ही हमें अपसंस्कृति के विरूद्ध लड़ने के लिये प्रेरित करती हैं ताकि समाज में संस्कृति का श्रेष्ठतम स्वरूप ही स्थापित हो सकें और जन–जन के जीवन को नये उत्साह से भरा जा सकें। तभी विकसित संस्कृति का निर्माण हो पायेगा क्योंकि हमारी संस्कृति की प्रकृति यही रही है कि इसने सीमाओं को कभी स्वीकार नहीं किया। उसने एकता के लिए संघर्ष किए हैं। हमारे सामाजिक और धार्मिक विष्वास समय के साथ, प्रत्येक युग की सभ्यता के साथ बदलते रहें हैं। हमें संस्कृति को अविछिन्नता और निरन्तरता के रुप में प्राप्त करना है, या फिर एकता की चेतना में।"[10] हमारे पास क्या है ? और हम क्या हैं ? इसके अन्तर को समझना होगा। बदलते भौतिकवादी परिवेष में हमने जिन्दगी की सुविधा हेतु बहुत कुछ साजो–सामान संग्रहित कर सभ्यता का विकास कर लिया, यह अच्छी बात है, परन्तु हम क्या हैं, संस्कृति के इस पक्ष को भी याद रखना होगा। अपनी श्रेष्ठ संस्कृति, परम्पराओं, सामाजिक मान्यताओं, धार्मिक विष्वासों और अपनी विरासत को आत्मसात कर अपने सांस्कृतिक पक्ष को भी मजबूत करना होगा।

वस्तुतः इन समीचीन तर्को का मूल्यांकन करें तो हम पाते हैं कि आज भी सामाजिक एकता एवं सुरक्षा की दृष्टि से संयुक्त परिवार की महत्ता की आवष्यकता है। उसकी प्रासंगिकता को नकारा नहीं जा सकता। "आज का भारत एक ऐसे दौर से गुजर रहा है, जिसे हम संक्रमणकाल कह सकते हैं। आधुनिकता और परम्परा के संतुलन की आवष्यकता है। कथनी–करनी का अंतर मिटाना है और "सत्यम् षिवम् सुन्दरम्" को फिर से अपनाना है।[11] स्वामी दयानंद सरस्वती का "वेदों की ओर लोटो" नारा महज एक वाक्य नहीं अपितु एक सम्पूर्ण दर्षन है। हमारे प्राचीन ऋषियों, मुनियों, समाज सुधारकों व चिन्तकों ने जीवन के दीर्घकालीन अनुभवों के आधार पर ही सामाजिक ताने–बाने की रचना की थी, इसे झुठलाया नहीं जा सकता, चाहे हम सभ्यता के विकास के कितने ही षिखर क्यों ना छू लें। तभी तो अब भोग छोड़ योग की महत्ता को समझा जाने लगा है। अतः जरूरी है कि हम सब मिलकर अपनी सामाजिक एवं सांस्कृतिक धरोहर को संभालने की दिषा में कार्य करें, तभी हम हमारे प्राचीन गौरव को पुनः स्थपित करते हुए सामाजिक समरसता को प्राप्त कर सकते है।

lnHk xFk

1. ऋग्वेद, 10.85.42, : सायण भाष्य सहित, संपादक, एफ. मैक्समूलर, 1890–92; 5 भाग, वैदिक संषोधन मण्डल, पूना, 1933–51.
2. वही, 10.85.46.
3. इरावती कार्वे : भारत में संबंधो का संगठन, पूना, 1968.
4. रविन्द्र नाथ मुखर्जी : सामाजिक मानवषास्त्र की रूपरेखा, पृश्ठ 239
5. अथर्ववेद, 45.3–6, : संपादक, श्रीपाद शर्मा, औधनगर, 1938.
6. विज्ञानेष्वर, मिताक्षरा : याज्ञवल्क्य स्मृति पर भाष्य, 2.117, बम्बई, 1905.
7. डॉ. धर्मवीर महाजन : नातेदारी विवाह एवं परिवार का समाजषास्त्र, विवेक प्रकाषन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2005, पृष्ठ 233.
8. वही, पृष्ठ 233.
9. वही, पृष्ठ 233
10. भारतीय संस्कृति : स्पेक्ट्रम बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2004, पृष्ठ 5 व 6.
11. वही, पृष्ठ 15.
12. डॉ कैलाषचंद्र जैन : प्राचीन भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक संस्थायें, म. प्र. हिं. ग्रं. अका., भोपाल, पंचम संस्करण, 1995.
13. डॉ. जयषंकर मिश्र : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1983